International Journal of Applied Research 2015; 1(6): 57-58

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2015; 1(6): 57-58
www.allresearchjournal.com
Received: 21-02-2015
Accepted: 24-03-2015

धर्मेन्द्र कुमार
शोधार्थी, संस्कृत–विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Correspondence:
धर्मेन्द्र कुमार
शोधार्थी, संस्कृत–विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मुक्ति और उसके साधन

धर्मेन्द्र कुमार

जीवन बन्धन है:–
धर्म का ध्येय मुक्ति है अर्थात् छुटकारा। साधारण मनुष्यों के लिए संसार बन्धन है। वे जीते हैं, इसलिए कि उन्हें जीना पड़ता है। वे परिश्रम करते हैं, इसलिए कि उन्हें परिश्रम करना पड़ता है। यदि भोजन का झंझट न हो तो वे हाथ पैर ही न हिलाऐं। उनकी दृष्टि में हाथ पैर न हिलाना ही मुक्ति है। वास्तव में देखा जाये तो आलस्य और मुक्ति एक दूसरे के सर्वथा विरोधी भाव हैं। मुक्त मनुष्य कर्म करता है, हाँ! कर्म की ग्लानि से सदा छूटा रहता है।

मृत्यु का भय:–
ऐसे भी लोग संसार में विद्यमान हैं जो जीवन को मानों त्यौहार समझते हैं उनके लिए जीवन भार नहीं है, हँसते खेलते समय–यापन करते जाते हैं। परन्तु मृत्यु उनके लिए भी भंयकर होती है। कोई आपत्ति आ जाय तो अधीर होकर बैठ जाते हैं। अवश्यंभावी को भोग लेते हैं सही, परन्तु बाधा–वश होकर। मुक्ति इन बाधाओं से ऊपर होने की अवस्था है। जीवन मुक्त जीता है और सर्वदा आनन्द पूर्वक जीता है। उसे मृत्यु का भय नहीं होता। वह तो जीवन–मरण का समभाव से स्वागत करता है। इसी अवस्था को वेद में अमृत कहा गया है।

मुक्त स्वभाव :–
'मुक्त स्वभाव' परमात्मा है। उनका ज्ञान–बल क्रिया स्वाभाविक हैं उन्हें उसमें ग्लानि नहीं होती। प्रभु का परिश्रम वास्तव में 'अनथक' है। प्राणिमात्र के कल्याण के लिए वेद का उपदेश कर दिया है। कोई लाभ उठा ले तो उसकी इच्छा, न उठाये तो भी उसकी इच्छा। इसका हानि–लाभ उसी को होगा। संसार के जीवन का प्रभु के आनन्द पर कोई प्रभाव नहीं।

मनुष्य की मुक्ति :–
प्रभु निर्विकार है, एक रस है, आनन्दस्वरूप है। इसके विपरीत मनुष्य की मुक्ति परिश्रम साध्य है, स्वभाव सिद्ध नहीं। यह जितना परमात्मा के निकट जाता है, उतना अधिक आनन्द का अनुभव करता है। मुक्ति की दशा में आत्मा परमात्मा का अत्यन्त सामीप्य होता है। वेद ने इस भाव को बड़ी ही सुन्दरता से दर्शाया है–

यत्र सुपर्णा अमृतस्यभागमनिमेषंविदथाभिस्वरन्ति।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विशेषः।।[1]

अर्थात् जिसमें सुकर्मकारी लोग ज्ञान से अमृत के प्रसाद को निरन्तर प्राप्त करने की घोषणा करते हैं, वह समस्त संसार का स्वामी और रक्षक अपने ज्ञान में रमने वाला मुझ परिपक्व (यम नियम से पके हुए) आत्मा में प्रविष्ट है, अर्थात् मुझे उसका साक्षात्कार होता है।
इस मुक्ति सुख का भोग इन्द्रियों द्वारा नहीं होता। आत्मा अपनी शक्तियों से परमात्मा के सहारे उस परम आनन्द का भोग करता है। पुनः कहा है–

''तन्नो नशद्यः पितरं न वेद–''[2]

वह उस (प्रसाद) को प्राप्त न करेगा जो (जगत) पिता को नहीं जानता।
यजुर्वेद[3] में भी कहा गया है–''तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय''। उसको जानकर मृत्यु से परे होता है। मुक्ति का और कोई साधन नहीं है।

साधन परमात्म–प्राप्ति :–

मुक्ति का साधन परमात्म ज्ञान है। यह ज्ञान मन आदि इन्द्रियों द्वारा प्राप्त नहीं होता। परमात्मा का साक्षात्कार गुहा (अन्तर्हृदय) में आत्मा की एकाग्रता द्वारा किया जाता है। अन्य द्वारों पर दूत भेजे जा सकते हैं, यहाँ स्वयं अपना सेन्दशहार होना होता है। संस्कृत में विद् धातु का अर्थ ज्ञान और प्राप्ति दोनों हैं। वास्तविक ज्ञान वही है जिसकी उपलब्धि इन्द्रियों के आवरण हटाकर की जाती है और परमात्मा के सम्बन्ध में तो इसके अतिरिक्त और कोई प्रमाण विश्वासप्रद होता ही नहीं। सद्विचार सत्योच्चार और सदाचार से ही परमात्मा गम्य है। वेद कहता है– 'ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुतः'[3]।

आत्मा परमात्मा का ऐक्य :–

महामुनि पतंजलि ने इस साध्य की सिद्धि के लिए अष्टांगयोग का उपदेश किया है। यम–नियम से लेकर समाधि पर्यन्त सभी चित्त–निरोध के साधन हैं। यमों में समाज सम्बन्धी संयम का समावेश है, नियमों में वैयक्तिक यन्त्रणा का। फिर आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि चित्त को एकाग्र करने की सुव्यवस्थित प्रणाली की सीढ़ियाँ है। आसन और प्राणायाम आत्मैकाग्रता के शारीरिक साधन हैं तो धारणा और ध्यान मानसिक उपाय हैं।

समाधि मन–सहित सब कारणों के पीछे रह जाने की अवस्था है। वहाँ प्रभु और भक्त के बीच में और कोई नहीं होता। तभी तो अथर्व वरूण से कहता है–''वेदाहं तद्यन्नावेषा समा जा''।[4] अर्थात् मैं जानता हूँ जो मेरी–तेरी समान ख्याति है।

इसी ऐक्यभाव के रहस्य को अधूरा समझकर कुछेक विचारकों ने मुक्त जीव की परमात्मा से स्वरूपतः एकता मान ली है। यह उनकी भूल है। स्वयं वेदान्त दर्शन का अन्तिम सूत्र है– 'भोगमात्र साम्यलिंगाच्च'।[5] अर्थात् एकता भोगमात्र की है। अथवा प्रभु के आनन्दमात्र को जीव प्राप्त करता है, उसके सर्वशक्तिमत्त्व, सृष्टृत्व आदि गुणों को नहीं।

मुक्ति सान्त हैः–

ऋषि दयानन्द ने मुक्ति को सान्त कहा है। इसमें कारण यह है कि जो पदार्थ जन्य है, वह अनन्त नहीं हो सकता। आत्मा स्वभाव से मुक्त होता तो बन्धन उस पर आ ही न सकता। उसका बद्ध होना ही सिद्ध करता है कि वह स्वभाव से मुक्त नहीं। बन्धन को भ्रम मानना एक नये भ्रमजाल में पड़ना है। भ्रम ही हो तो उसकी भ्रममात्र सत्ता ही पारमार्थिक मुक्ति को बाधित करती है। भ्रम मिटाने पर भी तो मुक्तिजन्य ही रहेगी। जो आरम्भ होता है, उसका अन्त क्यों नहीं? वेद भी प्रतिपादित करता है–

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारू देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये–पुनर्दात् पितंर च दृशेयं मातरंच।
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहेचारू देवस्य नाम।
सनो मह्या अदिते पुनर्दात् पितंर च दृशेयं मातरं च।।[5]

मुक्ति का स्वरूपः–

ऋग्वेद मण्डल नौ का 113वाँ सूक्त मुक्ति का वर्णन सोम नाम से करता है। सारा सूक्त पढ़ने और अपने विचार तथा आचार–भवन की आधर भित्ति बनाने योग्य है। इस सूक्त का एक मन्त्र यहाँ उद्धृत है–

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव।।[7]

जहाँ कामना का कामनापन दब जाता है, जहाँ आत्मावस्थिति की पराकाष्ठा है जहाँ सर्व–तन्त्र–स्वतन्त्र आत्मतृप्ति है, वहाँ हे अमृत प्रभो! मुझे अमर बना। इन्द्रियपति संयमी आत्मा के लिए सब ओर इस सुख का प्रवाह हो।

मुक्ति के स्वरूप का ऐसा सुन्दर विषयवासनाओं से उच्च, भौतिक ब्रह्माण्डातीत, केवल आत्मानन्द–स्वरूप वर्णन वैदिक धर्म का सर्वोत्तम प्रसाद है। इससे ऊँचा न तर्क जा सकता है न कोई और देव प्रेरणा।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध निबन्ध को सार रूप में कहा जा सकता है कि कई लोगों को जीवन भार लगता है। कई लोग मृत्यु से डरते हैं। मुक्त पुरुष जीवन की कर्म कठिनाई से घबराता नहीं, और मृत्यु का जीवन सदृश स्वागत करता है। उसका परिश्रम अनथक चलता है। सफलता निष्फलता उसके लिए समान हैं। जीता हुआ वह ग्लानियों से ऊपर है। मरकर कल्प पर्यन्त जीवन लाभ करता है। उस जीवन में मृत्यु नहीं होती, इसलिए उसे अमृत कहते हैं।

संदर्भ ग्रंथः–

1. ऋग्वेद–1/164/21
2. ऋग्वेद–1/164/22
3. वही–9/113/2
4. अथर्ववेद–5/11/10
5. वेदान्तदर्शन–4/4/21
6. ऋग्वेद–1/24/1–2
7. वही– 9/113/10
8. वैदिक दर्शन–पृष्ठ 64